षष्ठ अध्याय: कश्मीर विमर्श: एक तुलनात्मक अध्ययन

कश्मीर विमर्श: एक तुलनात्मक अध्ययन

कश्मीर केंद्रित उपन्यास लिखनेवाले रचनाकार कश्मीरी और गैर कश्मीरी दोनों हैं। कश्मीरी रचनाकार चन्द्रकान्ता, क्षमा कौल, मीरा कांत, संजना कौल हैं तथा गैर कश्मीरी रचनाकार मनमोहन सहगल, पद्मा सचदेव, मनीषा कुलश्रेष्ठ, मधु कांकरिया एवं जयश्री राय हैं। इन रचनाकारों के चयनित उपन्यासों के तुलनात्मक अध्ययन के दौरान जहाँ यह समानता मिलती है कि सभी उपन्यासों की कथावस्तु के केन्द्र में कश्मीर है, वहीं इस जीवन के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति और प्रस्तुति में अंतर भी मिलता है।

कश्मीरी और गैर कश्मीरी दोनों ही वर्ग के रचनाकारों के उपन्यासों में जो समानता मिलती है वह है कि इन्होंने अपने उपन्यासों में कश्मीर के राजनैतिक इतिहास को शामिल किया है। इन उपन्यासों को राजनैतिक उपन्यास की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। इन उपन्यासों के केंद्र में राजनैतिक घटनाएं नहीं है बल्कि उसके फलस्वरूप जनसामान्य के जीवन में उत्पन्न समस्याओं को रखा गया है और इन समस्याओं का विश्लेषण एवं उनके कारणों की पड़ताल राजनैतिक संदर्भों की चर्चा के बिना संभव नहीं है। इसलिए उपन्यासों में राजनैतिक घटनाएं केवल उसी रूप में आई हैं जिससे जनसामान्य पर उनका प्रभाव समझा जा सके।

कश्मीरी रचनाकार चन्द्रकान्ता के उपन्यास 'कथा सतीसर' में 1931 से 2000 तक की राजनीतिक घटनाएँ शामिल हैं, यथा- 1931 का दंगा, विलय की समस्या, क़बायली हमला, मोहम्मद अली जिन्ना, महात्मा गांधी और इंदिरा गांधी की कश्मीर-यात्रा और जीवन एवं राजनीति पर उसका प्रभाव, शेख अब्दुल्ला की नीतियाँ, केंद्र और प्रदेश के बीच होनेवाले संघर्ष आदि। इस उपन्यास में चन्द्रकान्ता ने भारत में कश्मीर के विलय को लेकर कई महत्वपूर्ण प्रश्नों को उठाया है। 'ऐलान गली ज़िन्दा है' और 'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास में चन्द्रकान्ता ने 'कथा सतीसर' उपन्यास की तरह राजनैतिक घटनाओं और इतिहास का विस्तृत चित्रण नहीं

किया है, बल्कि इन उपन्यासों में राजनैतिक घटना के रूप में केवल क़बायली हमले का ही चित्रण किया गया है। जैसे, "शेरे-कश्मीर शेख अब्दुल्ला की सूझ-बूझ, समझदारी व लोगों के प्रति वफ़ादारी थी जो रातोंरात उन्होंने जनता का नेतृत्व किया और भारतीय सेना की सहायता से कबाइलियों को मुज़फ्फ़राबाद तक पीछे वापस धकेला गया।"[1]

क्षमा कौल के उपन्यास 'दर्दपुर' में सन् 1947 में हुए कश्मीर पर हुए कबायली हमले और भारतीय फौज के कश्मीर में आने की घटना का चित्रण किया गया है। जैसे, "हाँ दिन में ऊपर से एक जहाज गुजरा था जिसने कुछ पर्चे बिखराये थे...जैसे बीज बिखेरते हैं।...लिखा है पर्चे पर कि 'घबराओ मत। हम आ रहे हैं। हिन्दुस्तान की फौज।' मगर कहाँ थी फौज?...मुझे पर्चे पर लिखी बात का अन्दर-ही-अन्दर गहरा भरोसा होने लगा और मैं फौज का इंतजार करने लगी।"[2] इस उपन्यास में चित्रित है कि भारतीय फौज का आना उन लोगों के लिए बेशक वरदान था जो हमलावरों से बच गए थे, लेकिन वे लोग जिन्हें हमलावरों की बर्बरता का सामना करना पड़ा था, उन्हें बचानेवाल कोई नहीं था। इस उपन्यास में राजनैतिक घटनाओं की अपेक्षा जीवन पर पड़नेवाले उसके प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभावों का ही विस्तार से चित्रण किया गया है।

संजना कौल के उपन्यास 'पाषाण युग' के केंद्र में राजनीतिक घटनाओं के कारण सामाजिक संबंधों, आचार-व्यवहार और जीने के तरीके में होनेवाला बदलाव है।

मीरा कांत के उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' में राजा हरिसिंह द्वारा सही समय पर कश्मीर-विलय का निर्णय न लिए जाने से उत्पन्न हुई समस्या का चित्रण किया गया है। राजा हरिसिंह द्वारा निर्णय में हुए विलंब का परिणाम कश्मीरियों को भुगतना पड़ा इस संदर्भ में राजा हरिसिंह के राजनैतिक निर्णयों पर कटाक्ष करते हुए कहा गया है, "अभी जून में जब जनाब माउन्ट बैटन साहब की तशरीफ़ का टोकरा यहाँ पहुँचा महाराजा से ख़ास बातचीत करने तो ऐन मौके पर अपने महाराजा के पेट में कॉलिक पेन हो गया!" फिर ओंकारनाथ ने हँसकर कहा, "हँह... शादी

के लग्न के समय अतिसार।"[3]

गैर कश्मीरी रचनाकार जयश्री राय के उपन्यास 'इकबाल' में कश्मीर में सन् 1987 के चुनाव में हुई धांधली का चित्रण किया गया है, "1987 के चुनाव में यूनाइटेड फ्रंट ने हिस्सा लिया। ये लोग अब्दुल्ला के खिलाफ थे, मगर जम्हरियत में यकीन रखते थे। उसमें हिस्सा भी ले रहे थे। राजीव गांधी और फारुख अब्दुल्ला ने मिलकर चुनाव लड़ा। इसमें भारी बेईमानी की गई!"[4] इस धांधली को उपन्यासकार ने उन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि के रूप में देखा जो सन् 1989-1990 में कश्मीर में बन गई थी। जनमत संग्रह एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया है, इस प्रक्रिया में हुई बेईमानी जनता के उन अधिकारों पर प्रहार है जो उन्हें संविधान द्वारा प्राप्त हैं। इस प्रहार ने कश्मीरियों के मन में सरकार के प्रति रोष भर दिया, जिसका फायदा दहशतगर्दो ने उठाया।

मधु कांकरिया के उपन्यास 'सूखते चिनार' में रूबिया सईद के अपहरण की घटना, उस संबंध में सरकार का निर्णय और उसके बाद कश्मीर में बिगड़ते हुए माहौल का चित्रण किया गया है। जैसे, "उन्हीं दिनों जे. के. एल. एफ के कुछ टपोरीनुमा कच्चे आतंकवादियों ने गृहमन्त्री मुफ़्ती मोहम्मद सईद की जवान पुत्री डॉ. रुबैया का अपहरण कर लिया। रुबैया के बदले उन्होंने अपने पाँच खूँखार आतंकवादियों को रिहा करने की माँग की। हाँ, यह वाक़्या 13 सितम्बर 1989 का था। यहीं से शुरुआत हुई अपराध-अपहरण और ख़ून-खराबे के नये दौर की।"[5] यहाँ उपन्यासकार ने सरकार की उस नीति का विश्लेषण किया है जिसके तहत रूबिया सईद की रिहाई के लिए पाँच आतंकियों को छोड़ दिया गया था। इन आतंकियों का छूटना उनके हौसले को और अधिक बढ़ावा देना था। वे सरकार की कमजोरी समझ चुके थे और दबाव बनाकर अपनी माँग पूरी कराने का एक आसान रास्ता भी उन्हें मिल गया था।

मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यास 'शिगाफ़' में किसी राजनीतिक घटना का प्रत्यक्ष चित्रण तो नहीं हुआ है लेकिन उसके प्रभाव का चित्रण अवश्य किया गया है। इस उपन्यास में बहुत संक्षेप में

कश्मीरी पंडितों की राजनीति में सीमित भूमिका पर सवाल उठाए गए हैं। जैसे, "कश्मीरी पंडित ने जम्मू-कश्मीर की राजनीति में कोई ख़ास रूचि ही नहीं ली। ली होती तो हालत बेहतर होते।"[6] लेकिन उपन्यास में इसके कारणों का विस्तार से विश्लेषण नहीं किया गया है।

'नौशीन' उपन्यास में कश्मीरी पंडितों के विस्थापन पर हुई राजनीति पर प्रकाश डाला गया है। इस उपन्यास का पात्र इक़बाल विस्थापन के लिए तत्कालीन राज्यपाल जगमोहन की भूमिका पर सवाल उठाते हुए कहता है, "देखो अरुन्धती, हम जानते हैं उनको गवर्नर जगमोहन ने निकाला, हमने नहीं निकाला। जो उन्हें वतन से निकाल सकता था, वो क्या उन्हें वतन में ही सुरक्षा नहीं दे सकता था!"[7]

मनमोहन सहगल के उपन्यास 'नरमेध' में राजनीतिक घटनाओं वर्णन विस्तार से किया गया है। भारत विभाजन, कश्मीर विलय का मुद्दा, पाकिस्तान की भूमिका, शेख अब्दुल्ला की राजनीति और गिरफ़्तारी आदि का विस्तारपूर्वक चित्रण मिलता है। देसी रियासतों के विलय में अंग्रेजों की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए उपन्यास का एक पात्र कहता है, "सन 1947 में अंग्रेजों ने भारत को आजाद कर दिया। साथ ही उन्होंने अपनी कूटनीति का परिचय देते हुए भारत की सभी देशी रियासतों को भी स्वतन्त्रता दे दी; वे अपनी इच्छा से भारत के साथ रहे, अलग से अपनी खिचड़ी पकाते रहें, या विभाजित भारत के अंग पाकिस्तान के साथ रहना पसंद करें, यह निर्णय उन्हीं पर छोड़ दिया गया।"[8] इस प्रकार उपन्यास में यह दिखाया गया है कि 'देसी रियासतों को स्वतंत्रता' देने का कारण उन रियासतों के साथ ब्रिटिश हुकुमत की संधि थी। जिसके अंतर्गत ये रियासतें ब्रिटिश भारत के अंतर्गत नहीं आती थीं और स्वतंत्र थीं। इन रियासतों के शासक अपनी रियासतों के स्वतन्त्र शासक थे। अत: वे भारत या पाकिस्तान किस देश में विलय करना चाहते हैं यह निर्णय लेने का अधिकार उन्हें ही था।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि कश्मीरी और गैर कश्मीरी रचनाकारों ने केवल कश्मीर की

परिस्थितियों का विश्लेषण करने, उसके बदलने-बिगड़ने के कारणों को बताने के लिए ही राजनीतिक घटनाओं का चित्रण किया है। चन्द्रकान्ता और मनमोहन सहगल ने अन्य रचनाकारों की अपेक्षा बहुत ही गहराई और विस्तारपूर्वक राजनीतिक घटनाओं और पहलूओं पर विचार किया है।

कश्मीरी-जीवन के दो पक्ष हैं- एक सामान्य जीवन और दूसरा आतंक से असामान्य होता जीवन। गैर कश्मीरी रचनाकारों ने जहाँ मुख्यत: आतंक से ग्रसित जीवन को ही संवेदनशीलता से अभिव्यक्त किया है वहीं कश्मीरी रचनाकारों ने अपने उपन्यासों में हिंसा, दहशत और आतंक के साथ त्यौहार, रीति-रिवाज, मान्यताओं, धार्मिक भेदभाव और उसके ख़त्म होने का चित्रण किया है। दूसरे शब्दों में, उन्होंने आतंक और हिंसा से इतर कश्मीरी जनसामान्य के जीवन का सूक्ष्मता से चित्रण किया है। कश्मीरी रचनाकारों ने जहाँ कश्मीरी जीवन को समग्रता के साथ प्रस्तुत किया है तो गैर कश्मीरी रचनाकारों ने कश्मीरी जीवन के कुछ ख़ास पहलुओं को ही केंद्र में रखकर उपन्यासों की रचना की है।

कश्मीरी रचनाकार कश्मीर के वर्तमान की त्रासदी की गाथा सुनाते हुए कश्मीर की सांस्कृतिक विरासत को लेकर चलते हैं। एक ऐसी विरासत जो दो कौमों के आपसी सहयोग, सद्भावना और प्रेम की बुनियाद पर निर्मित हुई थी। इनके उपन्यासों में पंडितों और मुसलमानों के त्यौहारों का विस्तार से चित्रण हुआ है। इसके माध्यम से दिखाया गया है कि दोनों ही कौमों के लोग एक-दूसरे के त्यौहारों में कितने प्रेम और सद्भावना से शरीक होते थे।

त्यौहार किसी समाज के निजी पहचान के साथ-साथ उस समाज के रीति-रिवाजों, जीवन-शैली और धार्मिक मान्यताओं को जानने का महत्वपूर्ण माध्यम भी होता है। कश्मीरी रचनाकारों द्वारा रचित उपन्यासों में त्यौहारों के चित्रण से एक ओर जहाँ कश्मीरी-जीवन का परिचय मिलता है वहीं दूसरी ओर उनके सामाजिक-सांस्कृतिक संबंध भी सामने आते हैं। उपन्यासों में त्यौहारों के

चित्रण का उद्देश्य कश्मीरी-जीवन की उस सहभागिता को दिखाना रहा है जिसकी चर्चा अपेक्षाकृत कम होती है। इस प्रकार कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में कश्मीरी जीवन के दोनों पक्ष मिलते हैं- एक आतंक से आहत जीवन तो दूसरा उनका पारंपरिक एवं सांस्कृतिक जीवन। ये दोनों जीवन अलग नहीं है बल्कि एक ही समाज का हिस्सा है।

गैर कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में कश्मीरी-जीवन के त्यौहार, उनके संबंधों और अंतर्विरोधों का चित्रण नहीं मिलता है बल्कि इन उपन्यासों में हिंसा और आतंक से प्रभावित जीवन उजागर है। जैसे, 'शिगाफ़' उपन्यास में मुहर्रम त्यौहार का चित्रण तो है लेकिन यह चित्रण विस्तृत रूप में न होकर कश्मीर में बदलती उन परिस्थितियों को दिखाने के लिए ही आया है जहाँ मौत के भय ने त्यौहारों के उल्लास को ख़त्म कर दिया है। यास्मीन अपनी डायरी में लिखती है, "क्या वक्त आ गया है! खाने में वो स्वाद नहीं रह गया है।...इस बार मोहर्रम पर मजलिसें हुईं तो मगर फीकी रहीं। सब डरे हुए हैं।"[9]

हर समाज की अपनी सांस्कृतिक पहचान होती है जो उसे विशिष्ट बनाती है। यह पहचान उस समाज की जीवन-पद्धति, रहन-सहन, रीति-रिवाज़, मान्यताओं और परंपराओं आदि से मिलकर बनती है। Edward B. Tylor के अनुसार संस्कृति में "knowledge, belief, art, morals, law, custom, and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society"[10] शामिल है। विश्वास, नैतिकता, मान्यताएं, रूढ़ियाँ, आचार-व्यवहार आदि किसी समाज की निजी पहचान होते हैं। इस आधार पर यदि कश्मीरी और गैर कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यास देखें तो उपन्यासों में प्रस्तुति के स्तर पर यह भिन्नता मिलती है कि कश्मीरी रचनाकारों की कथा जहाँ मूलत: कश्मीर-समाज को लेकर चलती है, वहीं गैर कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में अन्य प्रदेशों एवं अन्य देश के जीवन, संस्कृति और समस्याओं का भी चित्रण किया गया है। दूसरे शब्दों में कहें तो, गैर कश्मीरी रचनाकारों ने अपने उपन्यासों में उस जीवन का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है जहाँ उपन्यासों के पात्र विस्थापित होने के बाद रहते हैं

अथवा जहाँ से वे हैं। जैसे 'सूखते चिनार' उपन्यास में मूलकथा के बरक्स कई कथाएँ एक साथ चलती हैं। हर कथा किसी जीवन का अंतर्द्वंत अथवा अंतर्संघर्ष प्रस्तुत करती है। उपन्यास में एक कथा कश्मीरी आमजन और सेना की है, दूसरी उपभोक्तावादी संस्कृति की है, तीसरी विभिन्न संस्थानों में होनेवाली रैंगिंग की है और चौथी कलकत्ते के माड़वाड़ी परिवार की है। जैसे सेना और कश्मीरी जीवन को मेज़र सन्दीप के माध्यम से चित्रित किया गया है, आधुनिक जीवन शैली की विडम्बनाओं का चित्रण सन्दीप के भाई सिद्धार्थ के माध्यम से किया गया है, जिसके जीवन का पहला उद्देश्य 'सेल्स टारगेट' को किसी भी क़ीमत पर पूरा करना है और कम्पनी के लाभ के लिए वह किसी भी हद तक जा सकता है। सन्दीप के भाई सिद्धार्थ और उसकी पत्नी के माध्यम से पैसे, भौतिक सुविधाओं और पद के लिए जीवन के बहुमूल्य क्षणों को खोनेवाले उस वर्ग के जीवन का चित्रण भी है जिसके पास अंतत: तनाव, हताशा और अफ़सोस के अलावा और कुछ नहीं बचता है। वहीं दूसरी ओर सन्दीप के दोस्त अभिषेक के माध्यम से इंजीनियरिंग कॉलेज में होनेवाली रैगिंग का जिक्र है जो कई बार क्रूरता की हदें पार कर देता है। उपन्यास में यह प्रसंग विषयांतर नहीं है क्योंकि इस उपन्यास की मूल 'थीम' ही मानवता है, 'युद्ध और बुद्ध' के द्वन्द में बुद्ध की जीत है। सन्दीप का आर्मी कैम्प में या सिद्धार्थ का इंजीनियरिंग कॉलेज में होनेवाली रैगिंग के माध्यम से मधु कांकरिया उस जीवन को दिखाती हैं जहाँ व्यक्ति किसी की पीड़ा में आनंद की अनुभूति करता है। सिद्धार्थ सन्दीप लिखे पत्र में उस घटना का चित्रण करता है जहाँ उसके साथ के दो लड़कों ने अपने साथ होनेवाली रैगिंग से परेशान होकर आत्महत्या कर ली थी। यह लड़के कोई पहले या आख़िरी व्यक्ति नहीं होंगे जिन्होंने अपने घर से दूर 'हास्टल' में इस मानसिक और शारीरिक यातना को झेला होगा, बल्कि इस यातना को झेलने की एक परंपरा बन गई है। जहाँ कुछ समय पूर्व इस यातना को झेलनेवाला अपने बाद आनेवालों को और अधिक यातना देने को व्याकुल रहता है। किसी की यातना किसी के लिए मनोरंजन का साधन है। यह क्रम ऐसे ही चलता रहता है, फलस्वरूप कम उम्र में ही संवेदना क्रूरता में बदलने लगती है। इस

प्रकार उपन्यास में कश्मीर की कथा के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों की कथाएं भी समाहित हैं। मधु कांकरिया कलकत्ते के माड़वाड़ी समाज से हैं और इस उपन्यास का मुख्य पात्र सन्दीप कलकत्ते के एक माड़वाड़ी परिवार का है। अत: सन्दीप के भाई सिद्धार्थ के विवाह के अवसर पर माड़वाड़ी समाज के रीति-रिवाजों एवं गीतों का चित्रण किया गया है। जैसे, "ऊँट चढ़ी घर आवे लाड़ो/ सागे नही भेजूँगी।'/'केसरिया बालम, आओगी, पधारो म्हारे देश...'/ 'बाईसारा वीरा म्हाने पिबरियों ले चालो सा..."[11] साथ ही माड़वाड़ी समाज की मानसिकता का भी सूक्ष्मता से चित्रण किया गया है। सन्दीप के विवाह से पूर्व उसके छोटे भाई का विवाह होना भी उस समाज के लिए आश्चर्य की ही बात थी और एक हद तक उसकी पारम्परिक मान्यताओं पर आघात भी था, "अविवाहित जेठ! जाने कहाँ से शब्द गूँजा। सब हो-हो कर हँस पड़े।...माड़वाड़ी समाज में अविवाहित रहना भी जैसे अपराध है।"[12] जिस प्रकार कश्मीरी रचनाकारों ने कश्मीरी-जीवन में व्याप्त परंपराओं और मान्यताओं का चित्रण किया है उसी प्रकार इस उपन्यास में माड़वाड़ी समाज की मान्यताओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

'इक़बाल' उपन्यास में किसी अन्य प्रदेश का चित्रण नहीं है बल्कि कश्मीरी गीत, नृत्य, भोजन का वर्णन किया गया है। इक़बाल जिया को कश्मीर के भोजन से परिचित कराता है, "जी, हम कश्मीरी लोग सुबह नाश्ते में अधिकतर चाय के साथ एक खास तरह का ब्रेड खाते हैं जिसे लवासा कहते हैं। और ये मोंजि-गूल्य, मेरा मतलब नदुर्य मोजि! "मोजि-मूल्य...!'...'जी, नदरू यानी लोटस स्टेम कट इनटु फिंगर शेप एंड डिप्ड इनटु बेसन एंड फ्रायड। जस्ट लाइक पकौड़ाज...'इंटेरेस्टिंग..."हम लोट्स स्टेम बहुत खाते हैं- फिश के साथ, मूंग दाल या सलगम के साथ।"[13] वहीं कश्मीरी गीतों का परिचय देते हुए इक़बाल कहता है, "हमारे फोक सांग को 'छाकरी' कहते हैं। इन गीतों में अधिकतर फोक टेल या मुहब्बत के दास्तान सुनाये जाते हैं जै लैला-मजनूं, यूसूफ-जुलेखा की कहानियां। शादियों में मेंहदी की रात ये गीत ख़ास कर गाये जाते हैं। "आपका मतलब है, मुस्लिम शादियों में?" नहीं-नहीं, पंडितों की शादियों में भी ऐसे गीत गाये

जाते हैं।"[14] लेकिन गैर कश्मीरी रचनाकारों के इस प्रकार के वर्णन में उतनी स्वाभाविकता और जीवन्तता नहीं है जितनी कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में है। ऐसा वर्णन कश्मीरी-जीवन में घुला-मिला न होकर उसके परिचय मात्र तक ही सीमित है।

'शिगाफ़' उपन्यास में जहाँ 'कश्मीर-समस्या' पर विस्तार से लिखा गया है वहीं दूसरी ओर अमिता के माध्यम से स्पेन-जीवन और समस्यायों का चित्रण भी है। उपन्यास में अमिता और इयान बांड के संवादों के माध्यम से 'ला माँचा' के इतिहास और वहाँ हुई हिंसा का चित्रण है। इयान बांड अमिता को बताता है, "अमिता, अब मूरों और ईसाइयों के बीच सीमाओं को लेकर लगातार द्वन्द्व चला तब यह ज़मीन नो मेन्स लैंड रह चुकी है। कई खूनी शताब्दियों के बाद आखिरकार यह कास्टिलियनों के हिस्से आया जिन्होंने अपनी सीमाएँ बढ़ाने के लिए इसे उत्तरी स्पेन के लोगों को लाकर बसाया। नए लोगों के पास इस ज़मीन पर कुछ करने को था ही नहीं मगर धीरे-धीरे उन्होंने भेड़ों को पाला। फिर अंगूरों के बाग उगाए गए और यह प्रदेश बेहतरीन वाइन के लिए प्रसिद्ध हो गया।"[15] उपन्यास में यह प्रसंग अनायास नहीं आया है, बल्कि इस उदाहरण के रूप में आया है कि जिस तरह तमाम संघर्षों के बाद भी 'ला माँचा' के लोगों ने जीवन जीने की नई राह अंततः ढूंढ ही ली थी, संभव है कि कभी कश्मीर समस्या का भी कोई समाधान मिल जाए। इस उपन्यास में कश्मीर-समस्या को अन्य देश की समस्या के साथ जोड़ा गया है। इस उपन्यास में कश्मीरी जीवन-समाज की विसंगतियों को नहीं दिखाया गया है, लेकिन स्पेनिश समाज की उस मानसिकता को दिखाया है जहाँ अश्वेतों के प्रति उपेक्षा और रंगभेद का भाव है। उपन्यास की पात्र अमिता और उसकी एक अश्वेत अमरीकी दोस्त इस भेदभाव को महसूस करती हैं। अमिता अपने ब्लॉग में लिखती है, "मुझे किसी ने बताया कि हम दोनों की पीठ पीछे यहाँ के जर्मन सीखनेवाले स्पेनिश लड़के हमें चिढ़ाते हैं 'आइवरी एंड एबनी'। "क्सेनोफोबिया" है स्पेन के लोगों में। दो सौ साल पहले की स्लेवरी का असर इनके दिमाग़ों से गया नहीं है।"[16] जिस प्रकार 'इक़बाल' उपन्यास में कश्मीरी खान-पान का वर्णन मिलता है ठीक

उसी प्रकार इस उपन्यास में अमिता द्वारा स्पेन के खान-पान का वर्णन किया गया है। अमिता जब ला माँचा जाती है तो वहाँ के पारंपरिक खाने का वर्णन भी मिलता है, “हमने ला मांचा का पारंपरिक खाना खाया, रैड वाइन के साथ आलू के चिप्स और गैलेगा स्पाइस। टमाटर की ब्रेड के साथ ‘गम्बास डे पाल्मोस’ और ‘पिकिलो पेपर्स स्टफ्ड विद ट्यूना कॅानफिट’ और साल्सा। केसर और जैतून के तेल का प्रयोग”[17]

‘शिगाफ़’ उपन्यास में स्पेन एवं ‘सूखते चिनार’ उपन्यास में कलकत्ते का वर्णन है तो ‘नरमेध’ उपन्यास में चंडीगढ़ और दिल्ली का चित्रण है, लेकिन यह चित्रण कैंपों में विस्थापितों की स्थिति और उनके विरोध तक ही सीमित है। इस उपन्यास के ‘इस्लामाबाद’ अध्याय में पाकिस्तान की भी चर्चा हुई है परन्तु इस चर्चा के केंद्र में वहाँ का जीवन नहीं, भारत और कश्मीर के विरुद्ध होनेवाली साजिश है। जैसे, “पाकिस्तान की राजधानी इस्लामाबाद! जन-सभा में श्री लियाक़त अली खान घूँसा तान-तान कर अपनी बात पर बल देने का प्रयास करते हैं...कश्मीर मुसलमानों का है...हिन्दुस्तान जबरदस्ती इस मुस्लिम सूबे को हड़पना चाहता है, हम ऐसा हरगिज़ नहीं होने देंगे।”[18]

‘नौशीन’ उपन्यास में मुंबई के जीवन की कठिनाइयों का संक्षिप्त वर्णन मिलता है। जैसे, “कोलाबा से जुहू पहुँचने में एक घंटा लगा। अगर दफ्तर का वक्त होता तो ज़रूर डेढ़ घंटा लगता। दो भी लग सकते थे।”[19]

मुंबई-कलकत्ता-स्पेन को कथावस्तु में समेटे इन उपन्यासों में अलग-अलग प्रदेशों एवं अन्य देश की जीवन-शैली, खान-पान एवं आचार-व्यवहार का चित्रण किया गया है। ‘शिगाफ़’ उपन्यास की अमिता के माध्यम से स्पेन-जीवन का वर्णन है, ‘सूखते चिनार’ उपन्यास में मेज़र सन्दीप द्वारा कलकत्ते के माड़वाड़ी परिवार का चित्रण है, ‘नौशीन’ उपन्यास में मुंबई के जीवन का चित्रण है। कश्मीरी रचनाकारों द्वारा रचित उपन्यासों में अन्य देशों एवं भारत के अन्य क्षेत्रों की कथाएं नहीं

है। इन उपन्यासों की कथा कश्मीर से बाहर तो जाती है, लेकिन कश्मीर कभी भी कथा से बाहर नहीं जाता। वह पात्रों के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है, कभी उनकी स्मृति बनकर तो कभी दंश बनकर। इन उपन्यासों में कश्मीर में रहनेवाले अथवा कश्मीर से विस्थापित पात्रों के माध्यम से कश्मीरियों, विशेषकर कश्मीरी पंडितों, के आचार-व्यवहार और परंपराओं का विस्तार से चित्रण से किया गया है। जिसका कारण यह हो सकता है कि कश्मीरी रचनाकार कश्मीरी-जीवन के उस पक्ष को भी प्रस्तुत करना चाहते हैं, जो हिंसा और आतंक से इतर अपनी ही जटिलताओं में उलझा है।

कश्मीरी रचनाकारों ने अपने उपन्यासों में कश्मीरी-पंडित समाज के रीति-रिवाजों का विस्तार से चित्रण किया है, जबकि गैर कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में यह पक्ष चित्रित नहीं है। कश्मीरी रचनाकार कश्मीरी पंडित समाज के रस्मों से पाठकों को परिचित कराते हैं। जैसे, कश्मीरी पंडित समाज में स्त्री के गर्भवती होने पर 'दही-रस्म' का प्रचलन है। 'कथा सतीसर' उपन्यास में लल्ली के 'दही-रस्म' का चित्रण किया गया है। लल्ली अपने भाई नाथजी के साथ जब अपने ससुराल जाती है तो सस्थ में ढेर सारी वस्तुएं जैसे खाने की चीज़े, नगद पैसे आदि लेकर जाती है। इस रस्म के अनुसार गर्भवती स्त्री कुछ दिनों के लिए अपने मायके जाती है और बहुत सारे उपहारों के साथ ससुराल लौटती है। इस उपन्यास में चित्रित यह 'दही-रस्म' कश्मीरी-पंडित समुदाय में बहुत ही महत्वपूर्ण है। त्रिलोकीनाथ मदन भी अपनी किताब में इस रस्म का चित्रण करते हैं, "The ceremony becomes a pretext for the pregnant woman to go to her natal home and spend a few restful weeks there before she returns laden with gifts of ornaments and new clothes for herself, and also gifts in cash and kind for her relatives-in-law, which are given to her mother-in-law for distribution. The most important of these gifts is yoghourt, which is preferred to milk because it is regarded as more auspicious."[20] एक ओर जहाँ ऐसे रीति-रिवाज़ प्रेम और उल्लास

के प्रतीक हैं वहीं यह आर्थिक बोझ का कारण भी हैं। जिनके पास सामर्थ्य है वह अपनी बेटियों को बहुत कुछ दे सकते हैं लेकिन जो नहीं दे सकतें उनकी बेटियों के हिस्से ससुराल के ताने और उपेक्षा ही है। ठीक वैसे ही जैसे ललद्यद और हब्बा खातून के हिस्से में थी। इन तानों से बचना कश्मीरी स्त्रियों के लिए संभव नहीं था क्योंकि न देने का कोई अंत था और न लेने वाले की लालसा कभी मिट सकती थी। 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' उपन्यास में शबरी का भाई उसके ससुराल ढेर सारे अखरोट और गोश्त लेकर जाता है फिर भी शबरी की सास सबके सामने कहती है, "देखो तो शबरी से मायके से क्या आया है!...बताओं तो ये ज़रा-सा गोस्त किसे खिलाऊँ और किसे बाँटू?"[21]

कश्मीरी रचनाकारों ने अपने उपन्यासों में कश्मीर की लोक कथाओं, किवंदंतियों, जनश्रुतियों के माध्यम से कश्मीरी जीवन की विशेषताओं और सांस्कृतिक समन्वय को प्रस्तुत किया है, जो हमें गैर कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में नहीं मिलता। कश्मीरी रचनाकार चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच हुए रचनाकार ललद्यद, ऋषि शेख नुरुद्धीन और हब्बा खातून की चर्चा बार-बार करते हैं, क्योंकि इनके जीवन से जुड़ी कथाएं और इनकी रचनाएँ कश्मीरी-समाज में न केवल लोकप्रिय रहीं हैं बल्कि कश्मीरी-समाज की बुनियाद भी हैं। कश्मीरी रचनाकारों द्वारा इन कथाओं को उपन्यास में शामिल करने का उद्देश्य कश्मीर की साझी संस्कृति और व्याप्त रूढ़ियों को दिखाना रहा है। जैसे 'कथा सतीसर' उपन्यास में चित्रित है कि कश्मीर के संबंध में जिस साझी विरासत की चर्चा की जाती है वह किस तरह कथाओं के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होती है। कात्या कार्तिकेय से कहती है, "मेरी माँ बचपन में मुझे ललद्यदी और नुन्द ऋषि की ढेरों-ढेर कहानियाँ सुनाती थी।...कहते हैं, नुन्द ऋषि ने माँ का दूध नहीं पिया। तब लल्ली ने आकर बच्चे से कहा, 'जब जन्म लेने में शर्म नहीं, तो दूध पीने में क्या संकोच?' "[22] यह प्रसंग उस आधार को दर्शाता है जिसपर कश्मीरी पंडितों और मुसलमानों संबंध बने हैं।

'दर्दपुर' उपन्यास में ललद्यद और हब्बा खातून के जीवन के माध्यम से कश्मीरी समाज की

परंपरागत विचारों को उजागर किया गया है। जैसे इस उपन्यास में ललद्यद के जीवन से जुड़ी उस घटना का चित्रण हैं जहाँ उनकी सास उनके "भोजन के पात्र में सिलबट्टा रखती थी, ऊपर से कुछ चावल के दाने फैलाकर रखती थी ताकि लगे की चावलों से पात्र भरा है।"[23] ललद्यद की तरह हब्बा खातून भी अपने ससुराल में उपेक्षित थी। उनकी सास और पति की नज़रों में उनके रूप एवं गुणों का कोई मूल्य नहीं था। इस उपन्यास में चित्रित है कि इन दोनों स्त्रियों के हिस्से केवल तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा ही थी। संभवत: यही कारण है कि इनकी रचनाओं में सहनशीलता और विरोध साथ-साथ मिलता है। ललद्यद जहाँ यौगिक पद्धति को अपनाकर अपना जीवन भक्ति में समर्पित कर अपना विरोध दर्ज करती हैं वहीं हब्बा खातून अपने पति से अलग होकर नया जीवन शुरू करती हैं। उपन्यासों में चित्रित है कि कश्मीरी-समाज में ललद्यद और हब्बा खातून के शोषण को आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है। दरअसल उपन्यास कश्मीरी-समाज के उस पक्ष को उजागर करते हैं, जहाँ आदर्श समझी जानेवाली इन स्त्रियों के प्रतिरोध को अनदेखा कर केवल उन्हीं पक्षों की चर्चा की जाती है जहाँ वह सबकुछ सहते हुए अपने 'स्त्री धर्म' का निर्वाह करती हैं।

कश्मीरी रचनाकारों ने कश्मीर की अन्य सामाजिक समस्यायों का चित्रण किया है, जो गैर कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में नहीं मिलता। मीरा कांत का उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' में विधवा-समस्या, शिशु-हत्या, अनमेल विवाह, स्त्री-शिक्षा का विरोध आदि पक्षों का विस्तार से चित्रण करते हुए, कश्मीरी-जीवन को उसकी सम्पूर्णता में प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में "कश्मीरियत को वहीं के मुहावरों, कहावतों और किवदंतियों में अत्यन्त आत्मीयता से पिरोकर लेखिका ने आंचलिक साहित्य में एक संगेमील जोड़ा है।"[24] इस उपन्यास में कश्मीरी-जीवन में हिंसा और स्वार्थ के कारण उपजी अन्य सामाजिक समस्याओं का भी चित्रण किया है। जैसे क़बायली हमले के दौरान हुई हिंसा के वर्णन के साथ ही, हमले के पूर्व, कश्मीर में हुई नमक की कमी का चित्रण भी किया गया है। जहाँ लोग थोड़े से नमक के लिए मोहताज़ हो गये थे,

क्योंकि पाकिस्तान ने कश्मीर में नमक भेजना बंद कर दिया था। स्थिति यह बन गई थी कि "नमक 10 रु. सेर तक बिक रहा था जोकि एक औसत मध्यवर्गीय कश्मीरी की मासिक आय का लगभग एक तिहाई हिस्सा था।"[25]

कश्मीरी रचनाकारों ने कश्मीरी समाज में वृद्धों का अकेलापन और संयुक्त परिवार के विघटन का भी चित्रण किया है लेकिन गैर कश्मीरी रचनाकारों ने इस पक्ष पर प्रकाश नहीं डाला है। जैसे 'कथा सतीसर' उपन्यास की सोना कम उम्र में विधवा होने के बाद अपनी इच्छाओं को बच्चों की ज़रूरतों तक ही सीमित कर देती है। जिन बेटों को देखते हुए सोना ने एक उम्र गुज़ार दी थी वहीं बेटे उसे माँ की नहीं बल्कि उनकी जरूरतों को पूरा करनेवाली स्त्री के रूप में देखने लगते हैं। उनके लिए सोना का महत्व इस बात के लिए नहीं था कि वह उनकी माँ है बल्कि इस बात में था कि वह उनका घर-परिवार संभाल ले। सोना की तीनों बहुएँ संयुक्त परिवार में नहीं रहना चाहती थी अत: सोना उनके लिए घर का बंटवारा कर देती हैं लेकिन ख़ुद को बाँट नहीं पाती है। उसके तीनों बेटे उसे अपने पास रखना चाहते हैं क्योंकि उन्हें अपना घर-परिवार सँभालने के लिए सोना की ज़रूरत थी। सोना को अपने साथ रखने के लिए तीनों के पास अपने तर्क हैं, ज़रूरतें हैं लेकिन इन सबके बीच सोना सोचती है, "उस माँ के लिए, क्या सिर्फ सिर्फ माँ होना कारण नहीं था, जिसने उम्र के पच्चीसवें वर्ष से अकेलेपन को इसलिए स्वीकारा, कि उसके भीतर तीन नन्हें सोते उमग आए थे, जो उसकी रेतियों में, अन्तर के अनन्तनाग से फूटते ठंडे चश्मशाही के प्रपात बन सकते थे?"[26] पति की मृत्यु के बाद जो अकेलापन सोना ने भोगा था वह अंतत: सोना के साथ ही रहता है।

'ऐलान गली ज़िन्दा है' उपन्यास के संसारचंद और अरुंधती उम्र के आखिरी पड़ाव में गृहस्थी का भार अपने बहू बेटों को सौंप निश्चिंत होना चाहते थे, लेकिन उनके दोनों बेटे और बहू घर के बंटवारे के साथ माँ-बाप का भी बंटवारा करना चाहते हैं। दोनों चाहते हैं कि माँ उनके पास रहे और पिता दूसरे के पास। माँ को पास रखने में उनका यह स्वार्थ निहित है कि वह घर और बच्चों

को संभालेगी। अरुन्धती और संसारचन्द के लिए बेटों का यह निर्णय गहरा आघात था। यह निर्णय उनके उन बेटों का था जिसके लिए उन्होंने जीवन भर “सफेद को काला और रंगीन को सफेद कहा।”[27] इन उपन्यासों में संयुक्त परिवार के टूटने के चित्रण द्वारा जीवन-शैली में आते उन बदलावों को दिखाया गया है जहाँ नई पीढ़ी अकेले रहना चाहती है, क्योंकि संयुक्त परिवार अथवा माता-पिता की सलाह उनके लिए अपनी स्वतंत्रता में बाधक है। इन समस्याओं के चित्रण द्वारा कश्मीरी रचनाकारों ने कश्मीरी-जीवन और समाज की उन समस्याओं का चित्रण किया है जो हिंसा या किसी राजनैतिक निर्णय के कारण नहीं, बल्कि मूल्यों के विघटन और स्वार्थजनित मानसिकता के कारण उपजी है, जो आज के आधुनिक जीवन-शैली का परिणाम है।

कश्मीरी और गैर कश्मीरी रचनाकारों ने अपने उपन्यासों में पात्रों की मन:स्थिति का सूक्ष्मता से विश्लेषण किया है। इन उपन्यासों में केवल पात्रों के व्यवहार या स्वभाव का चित्रण भर नहीं है, बल्कि उन परिस्थितियों को भी सामने रखा गया है जिसमें उनका व्यक्तित्व निर्मित हुआ है। इन उपन्यासों में व्यक्तित्व-विश्लेष्ण तो किया गया है लेकिन चयन में अंतर है। कश्मीरी रचनाकारों ने उपन्यास में आतंक से प्रभावित कश्मीरी पात्रों के अंतर्द्वंद का चित्रण किया गया है। संजना कौल के उपन्यास ‘पाषाण युग’ के पात्र बृजमोहन जी अख़बार में संपादकीय लिखते थे। उनकी छवि एक ईमानदार, निर्भीक और सच लिखने वाले संपादक की थी, लेकिन एक समय ऐसा भी आया जब उन्हें अपने पच्चीस साल से निकल रहे अख़बार ‘रफ़्तार’ और अपने लेखन को बंद करना पड़ा। इसे बंद करना उनके लिए किसी मानसिक यातना से कम नहीं था, “अख़बार बंद करने से पहले वे गहरी मानसिक उथल-पुथल से गुजरे थे।”[28] बृजमोहन जी पर दबाव बनाया जाने लगा था कि वह आतंकियों की प्रशंसा अपने अख़बार में करें लेकिन उनका ज़मीर उन्हें ऐसा करने की गवाही नहीं दे रहा था। अत: एक लंबे अंतर्द्वंद के बाद उन्होंने अख़बार बंद कर दिया। इस घटना ने उन्हें बुरी तरह से आहत किया था, जिसका प्रभाव उनके मानसिक स्वास्थ्य और जीवन-शैली पर भी पड़ा था।

वहीं गैर कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में कश्मीर में नियुक्त सैनिक दहशतगर्द के अंतर्द्वंदों का सूक्ष्मता से चित्रण किया गया है। मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यास 'शिगाफ़' और मधु कांकरिया के उपन्यास 'सूखते चिनार' में दहशतगर्द वसीम और मेज़र सन्दीप के अंतर्द्वंद का विवरण भर नहीं है बल्कि उनके अंतर्विरोध, संघर्ष एवं मन: स्थिति को सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया गया है। इन दोनों उपन्यासों के ये पात्र एक समय के बाद युद्ध और अमन में से किसी एक को चुनने के लिए जूझते हैं। 'शिगाफ़' उपन्यास के 'आत्मालाप' खंड में वसीम के 'मैं' से मैं' के संघर्ष का चित्रण है। जहाँ उसका अंतर्मन उससे सवाल करता है कि उसने अब तक जो किया, जो करने वाला है उससे उसे क्या मिला? साथ ही उत्तर भी देता है कि केवल कुछ लोगों की जान गई, कुछ परिवार उजड़ गए और एक खुबसूरत धरती मासूम लोगों के खून से रंग गई। एक ओर इस तर्क के साथ वह स्वयं को सही ठहराता है कि जिस आम आदमी की वह चिंता कर रहा है वह आज़ादी के मार्ग में बाधा ही बनता है। वहीं दूसरी ओर उसके भीतर पछतावा और व्यर्थता बोध भी है, "यह आम आदमी...वह कश्मीरी था, जो नवाज़ा गया था अपने अमनपसन्द और मीठे मिजाज़ से।...'आज़ाद कश्मीर' के नारे से पहले वह बन्दूक चलाना जानता ही कहाँ था!"[29]

'सूखते चिनार' उपन्यास में आतंकी घटनाएँ, सैनिक-जीवन की कठिनाई, 'आर्मी ट्रेनिंग' के दौरान होनेवाली समस्या, सेना और कश्मीरियों के संबंध और संघर्ष का चित्रण है। इस उपन्यास में मेजर सन्दीप के माध्यम से सेना अधिकारी के उस अंतर्द्वंद का चित्रण किया गया है जहाँ बिना किसी सवाल या संदेह के 'आर्डर' मानना उनकी 'ड्यूटी' है, लेकिन फिर भी वह आत्मविश्लेषण करने से स्वयं को रोक नहीं पाते हैं। मेजर सन्दीप मानते हैं कि किसी आतंकी को मारने से पूर्व उसे एक मौका अवश्य दिया जाना चाहिए। मेज़र सन्दीप जब कनर्ल आर्य से कहते हैं, "ऐसी कच्ची कोपलों को समझा-बुझाकर उनसे आत्मसमर्पण करवाया जाए...एक बार कम-से-कम मौका अवश्य दिया जाए, जिंदगी पर पुनर्विचार करने का।"[30] तो कनर्ल आर्य इस बात का विरोध करते हुए उन्हें समझाते हैं कि उनका कार्य समाज-सुधार करना नहीं है, आतंक को ख़त्म करना है। मेज़र

सन्दीप जब आतंकी ज़मील के परिवार से मिलते हैं और उनपर यह दबाव बनाते हैं कि वह किसी भी तरह ज़मील को पकड़वाने में उनकी मदद करें, तब उस परिवार की स्थिति और बेबसी देखकर उन्हें यह एहसास होता है कि उनकी ‘ड्यूटी’ कैसे उनकी संवेदना को ख़त्म कर रही है। क्रूरता को ख़त्म करने के लिए वह भी क्रूर होते जा रहे हैं। यहीं से उनके भीतर युद्ध और बुद्ध में से किसी एक को चुनने का द्वन्द आरंभ होता है। मेज़र सन्दीप बुद्ध के मार्ग पर चलना चाहते हैं लेकिन उनकी ड्यूटी और कश्मीर की स्थिति उन्हें इसकी इजाज़त नहीं देती है।

कश्मीरी और गैर कश्मीरी दोनों रचनाकारों ने उपन्यासों में स्त्री-जीवन की त्रासदी को उजागर किया है। यह नहीं कहा जा सकता कि गैर कश्मीरी रचनाकारों ने केवल आतंक की शिकार और कश्मीरी रचनाकारों ने केवल पितृसत्तात्मक रूढ़ियों की शिकार स्त्रियों का ही चित्रण किया है लेकिन यह कहा जा सकता है कि गैर कश्मीरी उपन्यासकारों ने जहाँ मुख्यत: आतंक एवं हिंसा की शिकार स्त्री की स्थिति का चित्रण किया है वहीं कश्मीरी रचनाकारों ने इसके साथ-साथ कश्मीरी-समाज की आतंरिक जटिलताओं, कुरीतियों और सामाजिक बन्धनों में जकड़ी स्त्री का भी चित्रण किया है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यास ‘शिगाफ़’ की यास्मीन और जयश्री राय के उपन्यास ‘इक़बाल’ की जैनब जहाँ आतंक की शिकार है वहीं क्षमा कौल के उपन्यास ‘दर्दपुर’ की हुर्रत और ‘एक कोई था कहीं नहीं-सा’ उपन्यास की शबरी सामाजिक रूढ़ियों की कैद में छटपटा रही हैं। ‘दर्दपुर’ उपन्यास की हुर्रत और ‘इक़बाल’ उपन्यास की जैनब अपनी पहचान के लिए पुरुष पर आश्रित बना दी जाती हैं, लेकिन दोनों की परिस्थितियाँ भिन्न है। हुर्रत के माध्यम से स्त्री की उस दशा का चित्रण है जहाँ वह घर की मालिक नहीं समझी जाती है और अपनी पहचान के लिए पुरूष की मोहताज़ बना दी जाती है। हुर्रत अपने पति से अलग होने के बाद अकेले रहती है इसलिए उसे सरकार की ओर से दिया जानेवाला कूड़ेदान नहीं मिलता है। संबंधित अधिकारी से इसका कारण पूछे जाने पर उसे जवाब मिलता है, “हमें तो इजाजत है...मालिक वाले घरों में ही कूड़ेदान दे

आना...उस मालिक का नाम रजिस्टर में चढ़ाकर।"[31] चूँकि हुर्रत के घर में कोई मर्द यानी मालिक नहीं है तो रजिस्टर पर किसका नाम चढ़े? इस प्रश्न का उत्तर किसी के पास नहीं था। यहाँ हुर्रत आतंक की नहीं बल्कि उस मानसिकता की शिकार है जहाँ स्त्री का कोई स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जाता है। वहीं जयश्री राय के उपन्यास 'इक़बाल' में 'वार विडोज़' की समस्या को उठाया गया है। इस उपन्यास की जैनब का पति आतंकियों द्वारा मारा जाता है और जैनब की पहचान एक 'वॉर विडोज़' की बनकर रह जाती है, जिसका कोई भविष्य नहीं है। जिया जब इक़बाल से पूछती है कि जैनब दुबारा विवाह क्यों नहीं कर लेती तो वह कहता है, "कितनी वॉर-विडोज़ हैं...आज उनकी तरफ कोई नहीं देखता"[32] जैनब जैसी स्त्रियों के प्रति समाज सहानुभूति तो रखता है लेकिन उनसे कोई विवाह नहीं करना चाहता है। यहाँ जैनब और हुर्रत दोनों के अकेले रहने के कारण भले अलग हो लेकिन सामाजिक स्थिति एक-सी है। जहाँ हुर्रत की उसकी पति के बिना कोई पहचान नहीं है वहीं जैनब के पति की हत्या के बाद उससे जुड़ी 'वार विडोज़' की पहचान दे दी जाती है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यास 'शिगाफ़' में यास्मीन के माध्यम से आतंकी माहौल में विवाह की समस्या को उठाया गया है। 'शिगाफ़' उपन्यास की यास्मीन पढ़ी-लिखी थी। उसके पिता रहमान शिक्षक थे लेकिन अपनी बेटी के लिए उन्होंने कामिल को चुना जो पेशे से दर्जी था। यास्मीन कामिल से विवाह नहीं करना चाहती थी, लेकिन उसके पिता के लिए बिगड़ते में अपनी अनब्याही बेटी को घर रखना सुरक्षित नहीं था। अत: यास्मीन का निकाह बहुत जल्दबाजी में कामिल से तय कर दिया जाता है। अपनी डायरी में यास्मीन लिखती है, "निकाह बहुत हड़बड़ी में हुआ। वाज़वान की नाजुक पाकविधियों का अब काम भी क्या? मेरे निकाह की दावत में गोश्त की ये खानदानी चीज़े नहीं पकीं।...वाज़वान की महक को बारूद की महक ने दबा दिया था। गुज़रे युद्धों की छायाएँ वादी से गुज़र रही हैं। हवा में फैली सरगोशियाँ कह रही हैं जंSSSSग।"[33] अनमेल विवाह का चित्रण कश्मीरी रचनाकारों ने भी किया है, लेकिन उसका कारण आतंकवाद

नहीं सामाजिक रूढ़ियाँ थीं। ‘एक कोई था कहीं नहीं-सा’ उपन्यास की शबरी “के विवाह की बात कई जगहों पर चलाई गयी पर गाशा जी और भाभी को अट्ठावन साल के समसार चन्द ही खानदानी और इज्जतदार महसूस हुए। सरकारी ओहदे से सेवानिवृत्त हुए समसार चन्द का बहुत बड़ा दुमंजिला मकान था। गाँव में सेबों के बाग थे।”[34] शबरी समसार चन्द की तीसरी पत्नी थी। समसार चन्द की पहली दो पत्नियाँ मर चुकी थी और अब उनके बच्चों के भी बच्चे हो गए थे। यास्मीनऔर शबरी दोनों के विवाह में उनकी सहमती या इच्छा जाने का प्रयास नहीं किया गया था। यहाँ इन दोनों की समस्या एक है लेकिन उसके लिए ज़िम्मेदार परिस्थितियाँ अलग-अलग हैं। यास्मीन जहाँ आतंकजनित परिस्थितियों के कारण विवाह करने को मजबूर होती है वहीं शबरी सामाजिक रूढ़ियों की बलि चढ़ जाती है। हालाँकि कश्मीरी रचनाकारों ने भी स्त्री-जीवन में आतंकजनित समस्याओं का चित्रण किया है लेकिन उन्होंने उन समस्याओं को भी उठाया है जो सामाजिक रूढ़ियों के कारण उपजी हैं।

कश्मीरी और गैर कश्मीरी रचनाकारों ने अपने उपन्यासों में स्त्री क्रय-विक्रय का चित्रण किया है। ‘यहाँ वितस्ता बहती है’ उपन्यास में शिवा हरिद्वार से एक स्त्री को खरीद कर लाता है जो शिवा और जिया दोनों भाइयों के लिए उपभोग की वस्तु बन जाती है। लगभग पाँच सालों तक उन दोनों के अत्याचार को सहने बाद एक दिन उस स्त्री की लाश नदी में मिलती है। लाश को देखकर कुछ लोग जहाँ हत्या, आत्महत्या और दुर्घटना का अंदेशा व्यक्त करते हैं वहीं गौरी सोचती है, “उस निरीह लंगड़ी, आज्ञाकारी औरत की, जो शिवा-जिया की आज्ञा का पालन करती, मार खाती, उनकी वंश बेल बढ़ाकर अचानक किनारा कर गई। अब शायद उसकी जरूरत भी नहीं थी उन्हें। शिवा-जिया फिर किसी मेले-उत्सव में कुछ पैसा खर्च कर दूसरी औरत तलाश लेंगे”[35] खरीदी गई यह स्त्री कश्मीरी नहीं संभवतः मद्रासन थी, जिसके मरने के बाद शिवा जिया को भले कोई विशेष फर्क न पड़ा हो क्योंकि वे अपने लिए दुबारा कोई स्त्री खरीद सकते थे, लेकिन उसके बच्चों को दुबारा अपनी माँ नहीं मिल सकती थी। वे बच्चे जो हमेशा के लिए अनाथ हो जाते हैं।

इस उपन्यास में जहाँ बाहर से खरीदकर कश्मीर लाई गई स्त्री का चित्रण है वहीं 'शिगाफ़' उपन्यास कश्मीरी स्त्रियों के क्रय-विक्रय को दिखाया गया है। जहाँ नौकरी का झांसा देकर उन्हें बेच दिया जाता था, "पिछले साल अप्रैल में जब वह सेक्स स्कैंडल हुआ उसमें मजलूम और पिछड़े परिवारों की नाबालिग कश्मीरी लड़कियाँ थीं...कितनी अजीब बात थी कि जिस हालात में वे बड़ी हुई हैं...उन्होंने पिक्चर हॉल का मुँह तक न देखा होगा...महिलाओं की फैशनेबल किताबें उन्होंने छुई तक न होंगी...और बिना पार्लर जाए भी वे इस किस्म के स्कैंडल में जा उलझी थीं।"[36] कश्मीर में स्त्रियों के क्रय-विक्रय का यह चित्रण केवल उपन्यासों में ही नहीं हुआ है बल्कि सोनिया जब्बर ने अपनी 'डॉक्यूमेंट्री' 'Autumn's Final Country' (Presented by Asian Women's Human Rights Council', 2004) में बांग्लादेश से लाकर कश्मीर में बेचीं गई एक स्त्री के साक्षात्कार को शामिल किया है जहाँ उसे उसके घर से नौकरी दिलाने का आश्वासन देकर लाया जाता है और अंतत: कश्मीर में बेच दिया जाता है। जहाँ वह पत्नी के रूप में न केवल घर संभालती है बल्कि बाहर जाकर पैसे कमाने की ज़िम्मेदारी भी उसी पर है। यह स्त्रियाँ आर्थिक, मानसिक और शारीरिक तीनों स्तर पर शोषित हैं।

कश्मीरी और गैर कश्मीरी उपन्यासों में चित्रित स्त्री संबंधी मुद्दों की तुलना के दौरान यह बात सामने आती है कि इन उपन्यासों में जहाँ चयनित समस्या एक है, जैसे, स्त्री पहचान का प्रश्न, अनमेल विवाह, स्त्रियों का क्रय-विक्रय वहीं उसके लिए ज़िम्मेदार परिस्थितियाँ अलग-अलग हैं।

यदि पात्र-चयन के आधार पर देखें तो कश्मीरी और गैर कश्मीरी उपन्यासकारों ने कश्मीरी पंडितों को ही मुख्य पात्र के रूप में चुना है। कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों जैसे 'दर्दपुर', 'यहाँ वितस्ता बहती है', 'कथा सतीसर', 'ऐलान गली ज़िन्दा है', 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' और गैर कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों जैसे 'शिगाफ़', 'नरमेध' में कश्मीरी पंडित ही मुख्य पात्र हैं। जैसे 'कथा सतीसर' उपन्यास के केंद्र में अजोध्यानाथ का परिवार है। इस परिवार की लल्ली और उसकी बेटी कात्या इस उपन्यास की केंद्रीय चरित्र हैं। कथा की शुरुआत लल्ली से होती है, जहाँ

चन्द्रकान्ता इस उपन्यास को लिखने का कारण बताते हुए लिखती हैं, "एक और कारण भी है यह कथा लिखने का, जो सफ़ेद भौंहों-बरौनियों और उम्र की लकीरों से ढीलाए चेहरेवाली लल्लेश्वरी से ताल्लुक रखता है, जिसे हमउम्र, बड़े और नन्हे नाती-पोती भी लल्ली कहकर बुलाते हैं।"[37] इस उपन्यास में लल्ली जहाँ कश्मीर से विस्थापित होकर वहाँ लौटने को व्याकुल है वहीं कात्या कश्मीर में रहते हुए बिगड़ती परिस्थितियों को देखने के लिए अभिशप्त है। कात्या स्त्री-वेदना को नहीं बल्कि उसकी क्षमताओं को उजागर करनेवाली स्त्री-पात्र के रूप में सामने आती है। रोहिणी अग्रवाल कात्या के व्यक्तित्व के संबंध में लिखती हैं, "कात्या वर्तमान और भविष्य के अखंड धरातल को दरकाकर छिन्न-भिन्न कर देने को आतुर आतंकवाद के हर प्रकार की काट करने को वचनबद्ध है।"[38] कात्या बिगड़ते माहौल में भी कश्मीर छोड़कर नहीं जाती, बल्कि वहीं रहकर अपने डॉक्टर होने का फर्ज पूरा करती है। इस उपन्यास में कश्मीरी मुसलमान पात्र बड़ी संख्या में उपस्थित हैं। जैसे, महद जू, रसूल अहमद, रहमाना, खुर्शीद, अशी दाई आदि। इन सभी पात्रों की अपनी-अपनी कहानी है लेकिन यह सभी पात्र अजोध्यानाथ के परिवार के साथ ही किसी-न-किसी रूप में जुड़े हैं।

'दर्दपुर' उपन्यास में केन्द्रीय पात्र सुधा है जो विस्थापित कश्मीरी पंडित है। उपन्यास की कथा सुधा के माध्यम से ही आगे बढ़ती है। उपन्यास में सुधा के माध्यम से एक ऐसी विस्थापित स्त्री का चरित्र सामने रखा गया है जो कश्मीर लौटकर उन सभी जगहों से गुजरती है जो कभी उसके थे, लेकिन अब वह उन्हें अपना नहीं कह सकती, "आह! कुछ ही मीलों पर उसकी माँ का घर है...फिर थोड़ा और आगे बढ़ो...तो उसका स्कूल। स्कूल?"[39] इस उपन्यास में भी केंद्रीय चरित्र के रूप में विस्थापित कश्मीरी पंडित को ही चुना गया है, जिसके दुबारा कश्मीर लौटने पर कथा अतीत और वर्तमान को साथ लेकर आगे बढ़ती है।

'शिगाफ़' उपन्यास में अमिता, जो विस्थापित कश्मीरी पंडित है, कथा की केंद्रीय चरित्र है। इस उपन्यास में यास्मिन, जुलेखा और वसीम भी महत्वपूर्ण पात्र हैं लेकिन इनका अस्तित्व अमिता

से ही जुड़ा है। इन पात्रों की कहानी अमिता के माध्यम से ही सामने आती है। जैसे, अमिता द्वारा यास्मीन की डायरी पढ़ने के दौरान उपन्यास में यास्मीन की उपस्थिति होती है, अमिता द्वारा जुलेखा से जुड़ी ख़बरों को पढ़ने के दौरान जुलेखा की कहानी सामने आती है, अमिता द्वारा यास्मीन की डायरी वसीम को देने के बाद ही वसीम का आत्मालाप सामने आता है। यास्मिन, जुलेखा और वसीम जैसे पात्र उपन्यास में अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए भी अपनी उपस्थिति के लिए अमिता पर ही आश्रित हैं।

'एक कोई था कहीं नहीं-सा' उपन्यास के केंद्र में शबरी है। इस उपन्यास के अन्य पात्र पृथ्वी, अम्बरनाथ, जया, सादिक़, राहत बोबा, शीरीं आदि शबरी से ही जुड़े हैं। उपन्यास में कश्मीरी स्त्री की स्थिति, कश्मीर में होता बदलाव और विस्थापन के दंश को शबरी के माध्यम से ही दिखाया गया है। शबरी इस उपन्यास में एक सशक्त स्त्री पात्र के रूप में सामने आती है जो तमाम धमकियों और हमलों के बावजूद भी लड़कियों को पढ़ाना बंद नहीं करती है। उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य उन लड़कियों को शिक्षित करना था जो किन्हीं कारणों से पाठशाला नहीं जा सकती थी। शबरी की पाठशाला को बंद करने के लिए दहशतगर्द उसके घर के बाहर पोस्टर लगा देते हैं कि "बुढ़िया मास्टरनी की अचानक मौत की वजह से स्कूल बंद हो गया है। इस पोस्टर को यहाँ से हटाने वाले के हाथ काट दिए जाएँगे।"[40] साथ ही वे उन लड़कियों के परिवार को उन्हें शबरी के पास न भेजने और भेजनेवालों की बेटियों के चेहरे पर तेज़ाब डाल देने की की धमकी देते हैं। उनकी इस हरकत से शबरी भले ही अपने उद्देश्य में पूर्णत: सफल नहीं हो पाई हो लेकिन उसके माध्यम से मीरा कांत ने कश्मीर में फ़ैल रही स्त्री-शिक्षा के प्रति जागरूकता को दिखाया गया है। साथ ही एक ऐसी स्त्री-चरित्र को गढ़ा है जो उपन्यास में केवल अपनी पीड़ा बताने के लिए उपस्थित नहीं होती, बल्कि घर से बाहर निकल सामाजिक बदलाव और सुधार का काम भी करती है।

'पाषाण युग' उपन्यास की कथा 'अंजलि' के माध्यम से आगे बढ़ती है। उपन्यास में भी कश्मीरी

पंडित को ही कथा के मुख्य पात्र के रूप में चुना गया है। उपन्यास की अंजलि 'दर्दपुर' उपन्यास की सुधा, 'एक कोई था कहीं नहीं सा' उपन्यास की शबरी या 'शिगाफ़' उपन्यास की अमिता की तरह विस्थापित कश्मीरी स्त्री नहीं है, बल्कि वह कश्मीर में ही रहती है। अंजलि के माध्यम से इस उपन्यास में एक ओर जहाँ कश्मीर की बिगड़ती स्थिति को दिखाया गया है वहीं ऐसे माहौल में कामकाजी स्त्रियों को होनेवाली समस्यायों का चित्रण भी किया गया है।

'ऐलान गली ज़िन्दा है' उपन्यास के केंद्र में ऐलान गली है। उपन्यास में पंडित पात्रों की ही अधिकता है जिनकी कहानी ऐलान गली के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। उपन्यास के पात्र अर्जुननाथ, अनवर मियाँ, रत्नी, संसारचंद, लच्छी काकी, चंदन, अवतारा आम कश्मीर जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपन्यास के पात्रों का परिचय देते हुए चन्द्रकान्ता लिखती हैं, ऐलान गली जहाँ "अँधेरे में रात को बापू के साथ मंदिर से लौटते अवतारे को हर मोड़ पर काले कम्बलवाले चोर दुबके नजर आते।...जहाँ मुँह फट रत्नी को अनेक शिकायतें हैं,..जहाँ सदियों पुराने मूल्य-मान्यताओं की लीक पर आँख-कान मूँदकर चलनेवाली अरुन्धती-सी 'साफ-पाक-दामनवाली' धर्मभीरु औरतें हैं।"[41] संसारचन्द जैसा पात्र भी है जो मन्दिर में आए चढ़ावे से पैसे चुराने में भी नहीं हिचकता, अर्जुननाथ भी है जो रोटी का टुकड़ा भी स्वर्ग जाने की लालसा में कुत्ते को खिलाता है, बच्चे की लालसा में तड़पती और दम तोड़ती लच्छी काकी है, सबकी मदद करनेवाले अनवर मियाँ भी है। अवतार शामू जैसे पात्र भी हैं जो कश्मीर युवकों के अंतर्द्वंद को दिखाते हैं जहाँ वे अपनी-अपनी परिस्थितियों से नाखुश हैं। अवतारा दूर जाकर भी 'ऐलान गली' का मोह नहीं छोड़ पाता वहीं शामू के मन में इस गली से बाहर निकल न पाने की छटपटाहट है।

'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास के केंद्र में राजनाथ का जीवन का चित्रण है जो कश्मीरी पंडित तो हैं लेकिन विस्थापित नहीं है। उपन्यास में राजनाथ के जीवन और उनके चरित्र-चित्रण के माध्यम से कश्मीरी-समाज की विसंगतियों और कुरीतियों को दिखाया गया है, जिसका राजनाथ

ताउम्र विरोध करते रहते हैं। राजनाथ के माध्यम से लेखिका ने उपन्यास में एक ऐसे व्यक्तित्व को सामने रखा है जो कश्मीरी समाज में व्याप्त रूढ़ियों और कुरीतियों को मिटाने का यथासंभव प्रयास करता है।

गैर कश्मीरी रचनाकार मनमोहन सहगल के उपन्यास 'नरमेध' के केंद्र में नरेन्द्र है जो विस्थापित कश्मीरी पंडित है। उपन्यास का आरंभ नरेन्द्र के कश्मीर से निकलकर चण्डीगढ़ कैम्प पहुँचने से होता है। अन्य उपन्यासों की तरह ही इस उपन्यास में भी मुख्य पात्र कश्मीरी पंडित है। अंतर बस इतना है कि वह विस्थापित स्त्री नहीं, बल्कि विस्थापित पुरुष है।

'सूखते चिनार' उपन्यास में मेज़र सन्दीप कथा के केंद्रीय पात्र हैं जिसके माध्यम से लेखिका ने कश्मीर के यथार्थ को सामने रखा है। अन्य उपन्यासों की तरह मेजर सन्दीप कश्मीरी विस्थापित नहीं हैं, बल्कि कश्मीर से बिल्कुल अलग पृष्ठभूमि से हैं। उपन्यास शुरूआत सन्दीप के मेजर सन्दीप बनने की यात्रा से होती है, "मेरी जिंदगी भारत के राष्ट्रपति के नाम समर्पित रहेगी। मैं भारत और भारत के संविधान के प्रति समर्पित रहूंगा। उसी के लिए जिऊँगा।...उसी के लिए मरुँगा...कि मैं अपना हित- सबसे अंत में सोचूँगा।"[42] कथा का अंत भी मेजर सन्दीप से ही होता है। जहाँ अन्य सभी उपन्यासों में कश्मीर की परिस्थितियों और कश्मीरियों की स्थिति को सामने लाने के लिए कश्मीरी पात्रों को माध्यम बनाया गया है वहीं इस उपन्यास में गैर कश्मीरी पात्र के नज़रिए से कश्मीर का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है। कश्मीर केन्द्रित उपन्यास में गैर कश्मीरी पात्र का केंद्र में होना उल्लेखनीय है।

अधिकांश चयनित उपन्यासों के कथा के केंद्र में स्त्री पात्र हैं, केवल 'नरमेध', 'यहाँ वितस्ता बहती है' और 'सूखते चिनार' उपन्यास में ही पुरुष चरित्र कथा के केंद्र में हैं। पुरुष चरित्र को कथा के केन्द्रीय पात्र बनाए जाने के क्रम में जयश्री राय का उपन्यास 'इक़बाल' भी देखा जा सकता है। उपन्यास का शीर्षक उपन्यास के पात्र इक़बाल के नाम पर रखा गया है। उपन्यास में दो

मुख्य पात्र हैं- जिया और इक़बाल। इन दोनों के संवाद, विचार, प्रेम और अंतर्द्वंद के माध्यम से ही उन दोनों का चरित्र सामने आता है। उपन्यास में इक़बाल अलग व्यक्तित्व और विचारधारा के बावजूद भी ‘सूखते चिनार’ उपन्यास के सन्दीप की तरह स्वतंत्र चरित्र नहीं है, बल्कि वह जिया के साथ हुए संवादों के माध्यम से ही उपन्यास में उपस्थित होता है।

चयनित उपन्यासों में पद्मा सचदेव का उपन्यास ‘नौशीन’ एकमात्र ऐसा उपन्यास है जिसकी केन्द्रीय चरित्र हसीना है जो कश्मीरी मुसलमान है। अन्य उपन्यासों के केन्द्रीय चरित्र हिन्दू है। ‘नौशीन’ उपन्यास की हसीना अन्य उपन्यासों के पात्रों की तरह न कश्मीर में रहती है और न ही कश्मीर में हुई हिंसा के कारण वहाँ से विस्थापित है, बल्कि वह विवाह के पश्चात पति के साथ मुंबई में रहती है। उपन्यास की कथा हसीना के इर्द-गिर्द ही घुमती है। कश्मीर में घटित हुई सारी घटनाएँ चाहे वह हिंसा, विस्थापन, हत्या हो या मुस्लिम परिवार में स्त्री की स्थिति हो हसीना एवं उससे जुड़े पात्रों के माध्यम से ही सामने आती है।

कश्मीरी और गैर कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में पात्र चयन के तीन स्तर मिलते हैं। पहला कश्मीरी पंडित पात्रों का चयन, दूसरा कश्मीरी मुसलमान पात्रों का चयन और तीसरा गैर कश्मीरी पात्र का चयन। कश्मीरी रचनाकारों ने कश्मीरी पंडित पात्र, विशेषकर स्त्री पात्र, को ही कथा का केंद्रीय चरित्र बनाया है। उनके उपन्यासों में कश्मीरी मुसलमानों की समस्याओं, विचारों और मन:स्थितियों का विस्तार से चित्रण हुआ है लेकिन ये स्वतंत्र चरित्र नहीं हैं, बल्कि उनकी कथा किसी कश्मीरी पंडित के माध्यम से सामने आती है। वहीं गैर कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में ‘शिगाफ़’ के अलावा ‘सूखते चिनार’, ‘नरमेध’, ‘इक़बाल’ और ‘नौशीन’ उपन्यास में यह क्रम टूटता है और पुरुष पात्र, गैर कश्मीरी तथा कश्मीरी मुसलमान भी कथा के मुख्य पात्र के रूप में उपस्थित होते हैं। उल्लेखनीय है कि चयनित उपन्यासों में कश्मीरी पंडितों और उनके माध्यम से कश्मीरी मुसलमानों का ही जिक्र मुख्यत: आया है। कश्मीर में रहनेवाले गुज्जर, डोगरा और सिख धर्म एवं अन्य जातियों का चित्रण न के बराबर है।

उपन्यासों में पात्रों की भूमिका के संबंध में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं, “अच्छे उपन्यास में प्रत्येक पात्र की दृष्टि और स्वर की स्वतन्त्र सत्ता होती है जिससे उसकी मानवीय गरिमा और अर्थवत्ता का निर्माण भी होता है।”[43] कश्मीर केन्द्रित उपन्यासों में भले कश्मीरी पंडित पात्रों की अधिकता हो, इसके बावजूद भी इन उपन्यासों में कश्मीर से संबंधित लगभग हर दृष्टिकोण को सामने लाने का प्रयास किया गया है। चाहे वह कश्मीर में रहनेवाली रूबीना हो या कश्मीर से विस्थापित अमिता, सैनिक जीवन की जटिलताओं को दिखानेवाले मेज़र सन्दीप हो या सेना या पुलिस द्वारा किसी भी रूप अथवा कारण के तहत शोषितों की चिंता करनेवाला पत्रकार ज़माल, भारत का पक्ष रखने वाली जिया हो या सरकार की नीतियों का विरोध करनेवाला इक़बाल इन सब के माध्यम से उपन्यासों में कश्मीर संबंधित जो अलग-अलग विचारों एवं विवादों को भी कथा में शामिल किया गया है।

कश्मीरी और गैर कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में भाषागत अंतर भी है। सभी उपन्यासों में यदा-कदा कश्मीरी भाषा का प्रयोग किया गया है लेकिन कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में यह प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। कश्मीरी रचनाकारों द्वारा कश्मीरी गीतों अथवा भाषा का प्रयोग अनायास ही है। ठीक उसी प्रकार जैसे किसी सहज बातचीत में अपनी भाषा आ जाती है। कश्मीरी रचनाकारों की यह भाषागत उपलब्धि है कि उन्होंने केवल कश्मीरी भाषा के शब्द और उद्धरण को ही नहीं बल्कि कश्मीर की लोककथाओं , गीतों, मुहावरे और लोकोक्तियों को भी उपन्यास में शामिल किया है। कश्मीरी और गैर कश्मीरी दोनों ही रचनाकारों ने काव्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। गैर कश्मीरी रचनाकारों द्वारा रचित काव्य की भाषा जहाँ अधिकांश: हिंदी है, जैसे “सोचते हो कि ये नहीं होगा/आस्माँ एक दिन ज़मीं होगा/आँख देखेगी, पर न देखेगी/दिल के होगा, मगर नहीं होगा/कोई मरने से मर नहीं जाता/देखना वो यहीं कहीं होगा।”[44] वहीं कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में कश्मीरी भाषा के गीत अधिक मुखरित हैं। जैसे “छुनथ रोनि मंज़लस करय गूर गूर/थन यलि प्योहम अड़रातन/ज़ातुक ल्यूखनय शिवनाथन/वुछमय ज़ातकस छय वुम्बुर

पूर/ छुनय रोनि मंज़लस करय गूर गू ऽऽर...। (मैं तुझे घुँघरू जड़े पालने में दुलराऊँगी। आधी रात को तुम जन्मे। तेरी जन्मपत्री स्वयं भगवान शिव ने लिखी। तेरी जन्मपत्री में तेरी लम्बी उम्र है...मैंने देखा है।)"[45]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कश्मीरी और गैर कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों के केंद्र में कश्मीरी-जीवन है। स्थानीयता और लोकजीवन की दृष्टि से इन उपन्यासों की तुलना की जाए तो कश्मीर का लोकजीवन कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में अधिक मुखरित होता है। कश्मीरी त्यौहार, लोककथा, गीत, रीति-रिवाज, साझी संस्कृति, धार्मिक भेदभाव, सामाजिक-सांस्कृतिक अलगाव, आतंरिक जटिलता और सामाजिक रूढ़ियों का विस्तृत चित्रण उपन्यासों में एकरसता नहीं आने देता, साथ ही कश्मीरी-जीवन के लगभग सभी पक्षों से पाठकों को परिचित भी कराता है। दूसरी ओर गैर कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में आतंक और हिंसा से जूझते पात्रों के अंतर्द्वंद और अंतर्संघर्ष का सूक्ष्मता से चित्रण किया गया है। कथावस्तु के केंद्र में कश्मीरी-जीवन होने के बावजूद कश्मीरी और गैर कश्मीरी उपन्यासकारों की अभिव्यक्ति में अंतर है। कश्मीरी रचनाकारों ने जिस 'लोक जीवन' को प्रस्तुत किया है उसे उन्होंने बहुत करीब से देखा है, उस जीवन के वे स्वयं अंग हैं। इसलिए उन्होंने अपने उपन्यासों में सामान्य से असामान्य होते कश्मीर का चित्रण किया है। जबकि गैर कश्मीरी रचनाकारों ने कश्मीर को बाहर से देखा है। गैर कश्मीरी रचनाकारों की दृष्टि में कश्मीर आतंक और हिंसा के कारण असामान्य हो गया है। अत: असामान्य कश्मीर पर ही वे अधिक केन्द्रित हुए हैं। आतंकवाद के पहले के कश्मीरी जीवन से अधिक परिचित न होने के कारण कश्मीर कैसे सामान्य से असामान्य क्रमश: बना, यह उनके उपन्यासों में कम उजागर हुआ है। अत: दोनों वर्ग के उपन्यासकारों की दृष्टि का यह अंतर उनकी अभिव्यक्ति का भी अंतर भी बन जाता है।

संदर्भ:

1. चन्द्रकान्ता (1992), यहाँ वितस्ता बहती है, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ 64

2. कौल, क्षमा (2004), दर्दपुर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 232

3. कांत, मीरा (2009), एक कोई था कहीं नहीं-सा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 126

4. राय, जयश्री (2014), इक़बाल, आधार प्रकाशन, हरियाणा, पृष्ठ 47

5. कांकरिया, मधु (2012), सूखते चिनार, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 43

6. कुलश्रेष्ठ, मनीषा (2010), शिगाफ़, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 72

7. सचदेव, पद्मा (1995), नौशीन, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 150

8. सहगल, मनमोहन (1986), नरमेध, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 13

9. कुलश्रेष्ठ, मनीषा (2010), शिगाफ़, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 102-103

10. टायलर, एडवर्ड बी. (1871), प्रिमिटिव कल्चर: रिसर्च इनटू द डेवलपमेंट ऑफ़ माइथोलॉजी, फिलॉसफी, रिलिजिन, आर्ट एंड कस्टम (वॉल्यूम-1), जॉन मुर्रे, लंदन

11. कांकरिया, मधु (2012), सूखते चिनार, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 118

12. वही, पृष्ठ 119

13. राय, जयश्री (2014), इक़बाल, आधार प्रकाशन, हरियाणा, पृष्ठ 21

14. वही, पृष्ठ 18-19

15. कुलश्रेष्ठ, मनीषा (2010), शिगाफ़, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 35

16. वही, पृष्ठ 30

17. वही, पृष्ठ 38

18. सहगल, मनमोहन (1986), नरमेध, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 51

19. सचदेव, पद्मा (1995), नौशीन, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 59

20. मदन, टी.एन. (1965), फैमिली एंड किनशिप, ए स्टडी ऑफ द पंडित ऑफ रूरल कश्मीर, एशिया पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 79

21. कांत, मीरा (2009), एक कोई था कहीं नहीं-सा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 24

22. चन्द्रकान्ता (2002), कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 324

23. कौल, क्षमा (2004), दर्दपुर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 109

24. वही, फ्लैप से

25. कांत, मीरा (2009), एक कोई था कहीं नहीं-सा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 131

26. चन्द्रकान्ता (2002), कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 280

27. चन्द्रकान्ता (1984), ऐलान गली ज़िन्दा है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 118

28. कौल, संजना (1998), पाषाण युग, आधार प्रकाशन, हरियाणा, पृष्ठ 33

29. कुलश्रेष्ठ, मनीषा (2010), शिगाफ़, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 217

30. कांकरिया, मधु (2012), सूखते चिनार, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 101

31. कौल, क्षमा (2004), दर्दपुर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 19

32. राय, जयश्री (2014), इक़बाल, आधार प्रकाशन, हरियाणा, पृष्ठ 71

33. कुलश्रेष्ठ, मनीषा (2010), शिगाफ़, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ, 112

34. कांत, मीरा (2009), एक कोई था कहीं नहीं-सा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 20

35. चन्द्रकान्ता (1992), यहाँ वितस्ता बहती है, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ 90

36. कुलश्रेष्ठ, मनीषा (2010), शिगाफ़, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 134

37. चन्द्रकान्ता (2002), कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 14-15

38. अग्रवाल, रोहिणी (2016), हिंदी उपन्यास समय से संवाद, आधार प्रकाशन, हरियाणा, पृष्ठ 178

39. कौल, क्षमा (2004), दर्दपुर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 16

40. कांत, मीरा (2009), एक कोई था कहीं नहीं-सा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 178

41. चन्द्रकान्ता (1984), ऐलान गली ज़िन्दा है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ viii

42. कांकरिया, मधु (2012), सूखते चिनार, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 7

43. पाण्डेय मैनेजर (2013), उपन्यास और लोकतंत्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 15

44. कांकरिया, मधु (2012), सूखते चिनार, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 111

45. चन्द्रकान्ता (2002), कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 65